असम के बहाने कुछ सवाल

भारतीय नागरिकता रजिस्टर (एन आर सी) को लेकर असम में चल रही स्थिति एक प्रकार से प्रजातंत्र के लिए खतरे की घंटी की तरह लग रही है। 19वीं शताब्दी के चुनावी लोकतंत्र और एक राष्ट्र की सीमाओं से परे भी सोचने की क्षमता रखने वालों के लिए यह एक चेतावनी है। ऐसा दिखाई पड़ रहा है, जैसे शासन और राजनीति विडंबनाओं और विरोधाभासों से भरे हुए हैं। भारतीय प्रजातंत्र ने भारत-पाकिस्तान युद्ध और 1962 में चीनी मूल के भारतीयों के लिए ही केवल नजरबंदी केन्द्रों की स्थापना की थी। यह भारतीयों की अंतरात्मा पर एक धब्बे की तरह है। आज असम में 40 लाख लोगों को भारतीय नागरिकता रजिस्टर से अलग खड़ा कर देने का मामला चिंताजनक है।

यह एक प्रकार की कुटिलता है, जिसके प्रति हम सबको सावधान रहना चाहिए। भारतीय जनता पार्टी ऐसे चुनावी जोड़-तोड़ करने में सिद्धहस्त है, जिससे अधिक से अधिक चुनावी लाभ प्राप्त किया जा सके। उसने प्रशासन के माध्यम से एन आर सी की योजना को बहुत ही सामान्य कहकर शुरू किया, और इसे लोगों के लिए करावास के दंड की तरह बना दिया। निगरानी के नाम पर शुरू की गई इस प्रक्रिया में तैनात अधिकारी को भगवान का दर्जा दे दिया गया, जो किसी को रजिस्टर में शामिल कर सकता है या बाहर कर सकता है। चालीस लाख लोगों को नागरिकता रजिस्टर से बाहर करके भाजपा ने बहुसंख्यकों के वोट अपनी तरफ कर लिए हैं। कहने को तो पार्टी यही कहती रहेगी कि उसने एक बड़ा जोखिम भरा काम किया है, जिसे कांग्रेस न कर सकी।

नागरिकता रजिस्टर की राजनीति से इतिहास में प्रवासियों की समस्या की पर्तें खुलती प्रतीत होती हैं। इसकी शुरूआत उपनिवेश काल में हुई थी, जब अंग्रेजों ने चाय बागान की खेती के लिए मजदूरों का आयात शुरू किया था। इसके बाद भारत-विभाजन और बांग्लादेश-युद्ध के चलते बहुत सी जनता 'अवैध' की श्रेणी में खड़ी कर दी गई। 'वैधता' की पहचान प्रमाण-पत्रों से की जाने लगी। परन्तु उनका क्या, जिनके पास कागज का टुकड़ा तो नहीं रहा या नहीं है, लेकिन जिनकी जड़ें कहीं गहरे उसी क्षेत्र में पैठी हुई हैं? क्या केवल कलम चलाकर उन्हें अवैध घोषित किया जा सकता है?

यह सब देखते हुए एक नागरिक की परिभाषा का प्रश्न उछलकर आ खड़ा होता है। क्या नागरिकता भूमि, निवास, पहचान, सांस्कृतिक जड़ों, भाषा और जातीयता पर आधारित होती है या एक प्रमाण पत्र पर? अनौपचारिक अर्थव्यवस्थाएं तो लंबे समय से एक ही स्थान पर निवास करने वालों को समय के साथ नागरिकता प्रदान करती जाती हैं। लेकिन असम के प्रवासियों का अस्थायीत्व उनके लिए अभिशाप बन गया है। उनकी रिहाइश भारतीय भ्रष्ट नेताओं की चुनावी अभीप्सा की भेंट चढ़ गई है। ऊपर से उन्हें 'घुसपैठिए' की संज्ञा का दिया जाना; दोहरी मार करता है। फिर अपने इसी वक्तव्य पर लीपापोती करते हुए नेता कहते हैं कि घुसपैठिए और शरणार्थी के भेद को समझा जाना चाहिए; असम की जनता के लिए समय और इतिहास पर विचार किया जाना चाहिए। इतने से भी बात नहीं बनती तो भाजपा के विरोधी दल इसका ठीकरा भाजपा पर ही फोड़ देते हैं, और कहते हैं कि यही वह पार्टी है, जिसने लोगों का जीना मुश्किल कर रखा है। कुल-मिलाकर नेताओं का कुत्सित रूप ही सामने आता है।

नेताओं को यह समझना चाहिए कि ऐसे मुद्दों को केवल कानूनी आधार पर नहीं चलाया जा सकता। इसके लिए उदारता, आतिथ्य और दया की भावना की बहुत बड़ी भूमिका होनी चाहिए। ऐसा न हो कि इस प्रकार के नजरबंदी केन्द्र और शिविर भारतीय प्रजातंत्र के लोगों के लिए रोजमर्रा की वस्तु हो जाएं, जहाँ वर्गीकरण के नाम पर शुरू की गई प्रक्रिया किसी का नामोनिशान मिटा दे।

भाजपा का कहना है कि यह सब जनता की सुरक्षा के लिए किया जा रहा है। परन्तु लोगों की सुरक्षा के नाम पर नागरिकता को खतरे में डालने का विचार कहीं से भी समर्थन योग्य प्रतीत नहीं होता। सुरक्षा तो अपने आपमें घेराबंदी है। जबकि नागरिकता तो किसी की परवाह करने और सुरक्षा देने से जुड़ी हुई है। सुरक्षा तो निगरानी, जाँच और पृथकत्व पर टिकी रहती है। जबकि नागरिकता तो किसी अजनबी को अपनी व्यवस्था में शामिल करने का नाम है। भाजपा द्वारा सुरक्षा के नाम पर चलाई जा रही यह मुहिम ऐसी है, जो प्रजातांत्रिक और सांस्कृतिक व्यग्रता को अपने वोट बैंक की तरह प्रयोग में लाई जाएगी। विश्व हिन्दू परिषद् की पश्चिम बंगाल एवं अन्य राज्यों में भी इस प्रकार का अभियान चलाए जाने की मांग पार्टी के मंतव्य का पुख्ता सबूत प्रस्तुत करती है।

असम के बहाने यह कहा जा सकता है कि नेताओं को एक बार फिर से संविधान को पढ़कर सीमाओं और नागरिकता की परिभाषा के बारे में विचार करना चाहिए। यह सच है कि नागरिक होने के लिए कुछ गुणों का होना आवश्यक हो। लेकिन क्या परिभाषा में मानवता का पुट नहीं होना चाहिए? क्या हम प्रजातंत्र के मिश्रित रूप को बनाए रखने के लिए थोड़ी सी अव्यवस्था को बर्दाश्त नहीं कर सकते? क्या हमारे नीति निर्माताओं के पास ऐसी किसी नीति पर विचार करने के लिए समय नहीं है, जो आतिथ्यपूर्ण और नागरिकता की मित्रतापूर्ण परिभाषा को व्याख्यायित करती हो; जिसमें हाशिए पर जिन्दगी गुजारने वालों के लिए थोड़ी जगह हो; और जहाँ खानाबदोशों को अपनी जीवनरेखा निर्मित करने की अनुमति हो? क्या हम एक ऐसे राष्ट्र के बारे में नहीं सोच सकते, जिसमें सीमाएं पारगम्य हों, और जिसकी नागरिकता में शरणार्थियों के लिए भी पर्याप्त स्थान हो? ये प्रश्न आज मुंह बाए खड़े हैं और हर भारतीय को असम के उन 40 लाख में से अपने आप को एक मानकर, उसकी मनःस्थिति पर विचार करने को विवश करते हैं।

'द हिन्दू' में प्रकाशित शिव विश्वनाथन के लेख पर आधारित। 6 अगस्त, 2018